एन. भार्गवन पिल्लै (मृत) जरिये विधिक प्रतिनिधि

बनाम

केरल राज्य

अप्रैल 20,2004

[डोरा दोराईस्वामी राजू और अरिजीत पसायत, न्यायाधिपतिगण]

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947; धारा 5 (2) और 19-दंड प्रक्रिया संहिता, 1973: धारा 197-दंड संहिता, 1860; धारा 409 - अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958; धारा 18-लोक सेवक-पूर्व मंजूरी के बिना स्टॉक के दुरुपयोग के अपराध का संज्ञान-की शुद्धता-अभिनिर्धारित, गबन के अपराध के लिये मंजूरी पूर्ववर्ती शर्त नहीं - तथ्यों पर, स्टॉक को सौंपना साबित हुआ-इसलिए, दोषसिद्धि को बरकरार रखा गया।

अपीलार्थी राज्य नागरिक आपूर्ति निगम में कनिष्ठ प्रबंधक के रूप में 5 वर्ष के लिए प्रतिनियुक्ति पर था। इसके बाद, उन्हें निगम के एक इकाई-डिपो में इकाई प्रबंधक के रूप में नियुक्त किया गया। प्रतिनियुक्ति की अवधि के अंतिम दिन, अपीलार्थी अपने उत्तराधिकारी को गोदाम का प्रभार और चाबियाँ सौंपे बिना छुट्टी पर चला गया। पी. डब्ल्यू. 3, उत्तराधिकारी ने डिपो का प्रभार संभाला। अपीलार्थी ने ड्यूटी के लिए रिपोर्ट किया और पीडब्लू 2 की उपस्थिति में गोदाम खोला। जब गोदाम में स्टॉक लिया

गया, तो यह पाया गया कि चावल, पामोलिन और चीनी के स्टॉक की कमी थी, जिसकी कीमत रु. 1,63,770 थी। अपीलार्थी ने तुरंत रुपये 50 हजार जमा किए और किश्तों में शेष राशि का भुगतान करने का वादा उठाया। अपीलार्थी को सेवा से निलंबित कर दिया गया था। निगम के प्रबंध निदेशक ने निदेशक सत्रकता (जांच) को मामले की सूचना दी और उन्होने अपीकर्ता के खिलाफ मामला दर्ज करने का निर्देश दिया। इस बीच, अपीलकर्ता सेवा से सेवानिवृत हो गया और इसलिये अभियोजन की मंजूरी प्राप्त नहीं की गई। विचारणन्यायालय ने अपीलकर्ता को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम 1947 की धारा 5(2) और आईपीसी की धारा 409 के तहत दोषी ठहराया और दो साल के कठोर कारावास और एक लाख रूपये के जुर्माने की चूक के साथ सजा सुनाई। उच्च न्यायालय ने अपील में दोषसिद्धि और सजा की पुष्टि की।

अदालत में अपील में, अपीलार्थी ने तर्क दिया कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 की धारा 19 और धारा 197 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत आरोप लगाये जाने से पहले आवश्यक मंजूरी प्राप्त नहीं की गई है और इसलिये संपूर्ण कार्यवाही कोई अस्तित्व नही रखती है। अभियोजन पक्ष ने अपीलकर्ता द्वारा कथित अपराध के किसी भ गलत विनियोग और/या आपराधिक कारण को स्थापित नहीं किया है; धारा409 आईपीसी के तहत आरोप साबित करने के लिये आवश्यक तत्व अनुपस्थित है; और

अपराधियो की परिवीक्षा अधिनियम, 1958 के तहत लाभ दिया जाना चाहिये क्योंकि उसने अंतर राशि का भुगतान करने का वादा किया था और राशि का एक हिस्सा भी जमा किया था।

प्रत्यर्थी-राज्य ने तर्क दिया कि द्वारा किया गया गलत विनियोग उसका आधिकारित कर्तव्य नहीं था और इसलिये सीआरपीसी की धारा 197 के तहत मंजूरी की आवश्यकता नहीं है; कि अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 का लाभ अपीलार्थी को उपलब्ध नहीं है।

अपील खारिज करते हुए अदालत ने, अभिनिर्धारित किया :

1.1 धारा 197 सी. आर., पी. सी. के तहत मंजूरी आईपीसी की धारा 409 के तहत अपराध के लिये पूर्ववर्ती शर्त नहीं है। [451 - सी]

जीवन दास बनाम हरियाणा राज्य, [1999] 2 एस. सी. सी. 530; बोरे गौड़ा बनाम कर्नाटक राज्य, [2000] 10 एस. सी. सी. 260; कालीचरण महापात्रा बनाम उड़ीसा राज्य [1998] 6 एस. सी. सी. 411; आर. बालकृष्ण पिल्लई बनाम केरल राज्य, ए. आई. आर. (1996) एस. सी. 9011 और राज्य पी. एफ. एम. पी. बनाम एम. पी. गुप्ता, जे. टी. (2003) 10 एस. सी. 32, को संदर्भित किया।

1.2. अभियोजन द्वारा सौंपने या गलत विनियोग का वास्तविक तरीका साबित नहीं किया जाना है। एक बार सौंपी गई संपत्ति साबित हो

जाने के बाद, यह साबित करना अपीलार्थी का काम है कि सौंपी गई संपत्ति का निपटान कैसे किया गया। यह केवल वचन के आधार पर नहीं था कि दोषसिद्धि दर्ज की गई थी, बल्कि अभिलेख पर अन्य साक्ष्य भी सौंपे जाने को निर्विवाद रूप से साबित करता है। इसलिए, यह अपीलार्थी को यह साबित करना था कि उसे सौंपी गई संपत्ति से कैसे निपटा गया था। इस संबंध में कोई सामग्री नहीं रखी गई थी। इसलिए, अधीनस्थ अदालतों ने सही ढंग से अभिनिर्धारित किया कि सौंपा जाना साबित हो गया है। अधीनस्थ अदालतों द्वारा सौंपे जाने और गलत विनियोजन के संबंध में दर्ज किये गये तथ्यो के समवर्ती निष्कर्ष अच्छी तरह से योग्य है और अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य के आधार पर पूरी तरह से योग्य और उचित है और हस्तक्षेप की आवश्यकता लिए कानून की किसी भी विकृति या पेटेंट त्रुटि से पीड़ित नहीं हैं। [451 - डी-जी]

1.3. अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 18; अधिनियम की धारा 5 (2) के तहत आने वालेमामले में परिवीक्षा अधिनियम के आवेदन को खारिज करती है,इसलिये परिवीक्षा अधिनियम के तहत लाभ प्रदान करने से संबंधित अपीलार्थी की याचिका में कोई सार नहीं है। [451 - जी; 452-ए] 446

आपराधिक अपील क्षेत्राधिकार : आपराधिक अपील सं. 1262/1998

आपराधिक अपील संख्या 840/1994 में केरल उच्च न्यायालय के निर्णय और आदेश 14.7.98 से।

सी.एन. श्री कुमार, अपीलार्थीगण के लिये।

रमेश बाबू एम. आर., प्रतिवादी के लिए।

न्यायालय का निर्णय अरिजीत पसायत, न्यायाधिपति द्वारा दिया गया था।

जे. एन. भार्गवन पिल्लई (इसके बाद ' अभियुक्त 'के रूप में संदर्भित), ने केरल उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दिए गए फैसले की शुद्धता पर सवाल उठाया, जिसके तहत उसकी दोषसिद्धि को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 की धारा 5 (2) (संक्षेप में 'अधिनियम') और भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 409 (संक्षेप में 'आई. पी. सी.') में बरकरार रखा गया था। अधिनियम के तहत अपराध के लिए, उसे 2 साल के कठोर कारावास की और 1 लाख रूपया जुर्माना देने की सजा, आईपीसी के तहत अपराध के लिये 6 महीने की कैद और 1 साल की सजा की डिफॉल्ट शर्त के साथ, सुनाई गई थी। चूंकि अपील के लंबित रहने के दौरान उनकी मृत्यु हो गई थी, इसलिए उनके कानूनी प्रतिनिधियों ने कार्यान्वयन की मांग की और उन्हें पक्षकार बना दिया गया ।

जिन आरोपों के कारण अभियुक्त पर मुकदमा चलाया गया, वे अनिवार्य रूप से इस प्रकार हैं :

अभियुक्त नागरिक आपूर्ति विभाग में सहायक तालुक आपूर्ति अधिकारी के पद पर कार्यरत था। वे कौडियार में केरल राज्य नागरिक आपूर्ति निगम (संक्षेप में 'निगम') में प्रतिनियुक्ति पर कनिष्ठ प्रबंधक के रूप में काम कर रहे थे। जब वे इस तरह से काम कर रहे थे, तो निगम,तिरूवनंतपुरम के क्षेत्रीय प्रबंधक के आदेश दिनांक 14/4/1983 के प्रदर्श पी-19 द्वारा उन्हें निगम, यूनिट पुनलूर के यूनिट मैनेजर के रूप में नियुक्त किया गया था। आदेशों के अनुसार उन्होंने पुनालुर इकाई में इकाई प्रबंधक के रूप में कार्यभार संभाला। निगम में उनकी 5 साल की प्रतिनियुक्ति 30.6.1986 को पूरी होनी थी। लेकिन निगम ने उन्हें मुक्त करने के बजाय नागरिक आपूर्ति विभाग से उनकी प्रतिनियुक्ति का कार्यकाल एक साल बढ़ाने का अनुरोध किया था यह कहते हुए कि कुछ देनदारियाँ बकाया थीं। लेकिन बाद में, प्रतिनियुक्ति के विस्तार के अनुरोध को निगम के प्रबंध निदेशक द्वारा राजस्व बोर्ड के नागरिक आपूर्ति निदेशक को लिखे गए पत्र प्रदर्श पी 38 द्वारा 30.11.1986 तक सीमित कर दिया गया। उसी पत्र द्वारा निगम के क्षेत्रीय प्रबंधक को दिनांक 30.11.1986 को ही आरोपी को उसके मूल विभाग कार्यमुक्त करने का निर्देश दिया गया था। निर्देश के अनुसार, क्षेत्रीय प्रबंधक ने प्रदर्श पी-20 आदेश दिनांक

29.11.1986 से अभियुक्त को दिनांक 29.11.1986 की दोपहर से प्रभावी रूप से कार्यमुक्त करते हुये जारी किया। हालाँकि, अभियुक्त ने 29.11.1986 पर आरोप नहीं सौंपा। वह 27.11.1986 के बाद अभियुक्त ने 29.11.1986 को प्रभार नहीं सौंपा। वह 27.11.1986 के बाद कार्यालय में उपस्थित नहीं हुआ, लेकिन उसने छुट्टी के लिए आवेदन किया। चूंकि वह 29.11.1986 पर कार्यालय में उपस्थित नहीं हुए थे, इसलिए क्षेत्रीय प्रबंधक ने प्रदर्श पी-22 दिनांक 1.12.1986 द्वारा पुनालुर डिपो में वरिष्ठ सहायक नटराजन असारी (पीडब्लू-3) को उस तारीख से प्रभावी रूप से कार्यभार संभालने की अनुमति दी। तदनुसार, पीडब्लू-3 ने डिपो का प्रभार ग्रहण किया और इसकी सूचना क्षेत्रीय प्रबंधक द्वारा निगम के प्रबंध निदेशक को प्रदर्श पी-23 दिनांक 4.12.1986 के जरिये दी गई। पुनालुर डिपो के भंडार को आंशिक रूप से पुनालुर में भंडारण निगम के गोदाम में और आंशिक रूप से कार्यालय से जुड़े गोदाम में संग्रहीत किया गया था, जिसे गवाहों द्वारा स्व-गोदाम के रूप में संदर्भित किया गया था। हालाँकि पीडब्लू-3 ने कार्यभार संभाला था, लेकिन अभियुक्त ने गोदाम की चाबियाँ नहीं सौंपी थीं और न ही स्टॉक का सत्यापन किया था। इसके बाद आरोपी ने डिपो में 13.12.1986 को रिपोर्ट की और निगम के क्षेत्रीय कार्यालय में तत्कालीन सहायक प्रबंधक (लेखा) (पीडब्लू-2) की उपस्थिति में चाबियाँ लेकर आया और गोदाम खोला। उन्होंने 13,15 और 16 दिसंबर, 1986 को कार्यभार

सौंपने के लिए प्रदर्श पी -24 द्वारा लिखित रूप से वचन भी दिया। अभियुक्तों की उपस्थिति में गोदाम में पाई गई वस्तुओं का सत्यापन किया गया। केवल एम. पी. उबले हुए चावल 21.875 क्विंटल और 84 कि. ग्रा. के इमली का स्टॉक स्व-गोदाम में पाया गया। राज्य भंडारण निगम से एक स्टॉक स्टेटमेंट भी प्राप्त किया गया था। निगम के प्रबंध निदेशक ने पीडब्लू-1 द्वारा एक विशेष लेखा परीक्षा आयोजित करने का निर्देश दिया, जो उस समय महालेखाकार के कार्यालय से प्रतिनियुक्ति पर निगम के आंतरिक लेखा परीक्षा खंड में सहायक प्रबंधक के रूप में काम कर रहे थे। तदनुसार, पीडब्लू-1 ने एक विशेष लेखा परीक्षा आयोजित की और प्रदर्श पी -1 तैयार किया गया।

राज्य भंडारण निगम के गोदाम में और स्व-गोदाम में उपलब्ध स्टॉक का सत्यापन 31.3.1986 को किया गया था। प्रदर्श पी P-2 भंडार सत्यापन रिपोर्ट के अनुसार, 37.8 क्विंटल पामोलिन और 44 क्विंटल मुफ्त बिक्री चीनी का वास्तविक भंडार था। दिनांक 1.4.1986 के बाद, 100 क्विंटल कागज, उबले हुये चावल भंडारण निगम डिपो से स्व-गोदाम में स्थानांतरित कर दिया गया और 23.65 क्विंटल पुनालूर के ओणम बाजारों से वापस कर दिया गया। इस प्रकार, भौतिक स्टॉक 123.65 क्विंटल उबले हुए चावल का होना चाहिए था। लेकिन पाया गया वास्तविक स्टॉक 21.65 क्विंटल था। इस प्रकार, 102 क्विंटल की कमी थी। इसी तरह, एक्जी पी.9

और 11 के अनुसार राज्य भंडारण निगम के गोदाम से कुल 72 क्विंटल पामोलिन को स्व-गोदाम में स्थानांतरित कर दिया गया था और अभियुक्त द्वारा प्रदर्श पी10 और पी12 माल हस्तांतरण नोट पर हस्ताक्षर किये गये, लेकिन, पामोलिन का कोई भंडार नहीं था। 1.4.1986 को 46 क्विंटल मुफ्त बिक्री चीनी का भंडार था। इनमें से 5 क्विंटल को एक खेप नोट दिनांक 31.10.1986 के अनुसार मावेली स्टोर, पुनालूर में स्थानांतरित कर दिया गया था। स्टॉक रजिस्टर में 30 31.10.1986 क्विंटल की समापन शेष राशि दिखाई दी, लेकिन गोदाम में कोई स्टॉक उपलब्ध नहीं था। पीडब्लू-1 ने चावल की कमी का कुल मूल्य 33,150 रूपये, पामोलीन का 1,08,000 रूपये और चीनी का 22,620 रूपये आंका गया था। उन्होंने यह भी बताया कि अभियुक्त ने प्रदर्श पी 13 और 14 श्रृंखला वाउचर के अनुसार इन वस्तुओं के लिए लोडिंग और परिवहन शुल्क वापस ले लिया था। अग्रदाय के तहत लेनदेन में या बिक्री और प्रेषण के संबंध में खातों में कोई अनियमितता नहीं पाई गई थी। भंडारण निगम के गोदाम में अतिरिक्त स्टॉक था क्योंकि राशन विक्रेताओं ने इसे नहीं उठाया था और उसका भी मिलान 31.12.1986 तक किया गया था। प्रदर्श पी-1, के द्वारा, पीडब्लू-1 ने परिवहनपर निरर्थक खर्चऔर गायब खाली बैरल की लागत सहित अभियुक्त की देयता 1,70,640 रूपये तय की । 29.12.1986 को आरोपी ने रुपये 1,63,770 भेजने का वादा किया जो कि कम पाये गये 72 क्विंटल

पामोलिन, 102 क्विंटल चावल और 39 क्विंटल चीनी का मूल्य 1,63,770 और आंशिक भुगतान के रूप में, उस दिन पुनालुर डिपो में रूपये 50,000 जमा किए गए। प्रदर्श पी-17 द्वारा उसने आधी रकम 2.1.1987 तक और शेष राशि अगले साल 31 मार्च तक जमा करने का वचन दिया। इसके बाद मामला राजस्व बोर्ड को सूचित किया गया और आरोपी को राजस्व बोर्ड के आदेश प्रदर्श पी 37, दिनांक 31.1.1987 द्वारा सेवा से निलंबित कर दिया गया। निगम के प्रबंध निदेशक ने प्रदर्शपी. 1 रिपोर्ट की एक प्रति के साथ सतर्कता निदेशक (जाँच) को पत्र लिखा। सतर्कता निदेशक (जांच) ने मामला दर्ज करने की मंजूरी दी। निर्देश के आधार पर तत्कालीन पुलिस उपाधीक्षक, सतर्कता, कोल्लम (पीडब्लू-10) ने प्रदर्श पी-39 के अनुसार मामला दर्ज किया। उन्होंने जांच कोल्लम सतर्कता इकाई-I (पीडब्लू-11) के निरीक्षक को सौंपी, जिन्होंने जांच की और अपने उच्च अधिकारियों को एक रिपोर्ट भेजी। इस बीच, आरोपी 28.2.1992 को सेवानिवृत्त हो गया। चूंकि वह सेवा से सेवानिवृत हो चुकेथेइइसलिये अभियोजन के लिए मंजूरी अनावश्यक हो गई थी। मामला नव स्थापित पथानामथिटटा सतर्कता इकाई को स्थानांतरित कर दिया गया । पीडब्लू-12, पुलिस उपाधीक्षक, सतर्कता, पठानमथिट्टा इकाई जिन्हें इस मामले का प्रभारी बनाया गया था, ने भी अभिलेखों का सत्यापन किया और आरोप पत्र दायर किया।

विचारण अदालत के समक्ष आरोपी ने खुद को निर्दोष बताया। बारह गवाहो को परीक्षित कराया गया और अभियोजन पक्ष द्वारा अपने मामले को आगे बढ़ाने के लिए 47 दस्तावेजों को प्रदर्शित कराया गया। हालाँकि अभियुक्त ने किसी भी गवाह से पूछताछ नहीं की, लेकिन दस्तावेज़ों को प्रदर्श डी. 1 से डी. 5 के रूप में चिन्हित किया गया था। । जैसा कि पहले उल्लेख किया गया था, विचारण अदालत ने सामग्री पर विचार करने के बाद आरोपी को दोषी ठहराया और उसे उपर्युक्त के अनुसार सजा दी गई। अपील में उच्च न्यायालय ने दोषसिद्धि और सजा की पुष्टि की।

अपील के समर्थन में विद्वान वकील श्री सी. एन. श्री कुमार ने प्रस्तुत किया कि अधिनियम की धारा 19 और दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (संक्षेप में 'संहिता') की धारा 197 के संदर्भ में अभियोजन के लिए मंजूरी के अभाव में पूरी कार्यवाही बेकार हो गई और मुकदमे को दूषित कर दिया गया था। इसके अतिरिक्त, यह प्रस्तुत किया गया कि अभियोजन पक्ष ने कथित अपराध के किसी भी गलत विनियोग और/या आपराधिक कारण को स्थापित नहीं किया है और इसलिए, दोनों विचारण अदालत और उच्च न्यायालय ने कानून के विपरीत काम किया है। यह आगे प्रस्तुत किया गया कि निचली अदालत और उच्च न्यायालय दोनों ही केवल अनुमानों के आधार पर यह मानने के लिये आगे बढे कि अभियुक्त ने विनियोग किया था। आई. पी. सी. की धारा 409 के तहत आरोपों को साबित करने के

लिए आवश्यक तत्व पूरी तरह से अनुपस्थित हैं। इसके अतिरिक्त, यह प्रस्तुत किया गया कि निचली अदालत और उच्च न्यायालय दोनों ने इस तथ्य को अनुचित महत्व दिया है कि अभियुक्त-अपीलार्थी अंतर राशि का भुगतान करने के लिए सहमत था। जीवन दास बनाम हरियाणा राज्य, [1999] 2 एस. सी. सी. 530 के मामले में इस अदालत के फैसले पर भरोसा व्यक्त किया गया था, यह कहने के लिये कि भले ही आरोपी उस राशि का भुगतान करने के लिये सहमत हो गया था जो इस मुद्दे पर विचार करते समय महत्वपूर्ण नही थी कि अभियोजन द्वारा सामग्री को सुस्थापित किया गया है। यह एक ऐसा मामला है जिसमें मांगी गई मंजूरी को अस्वीकार कर दिया गया था। अभियोजन पक्ष ने इस स्थिति का लाभ उठाते हुए अनुचित तरीके से काम किया है कि अधिनियम के तहत सेवानिवृत्ति के बाद मंजूरी की आवश्यकता नहीं है। किसी भी स्थिति में, सेवानिवृत्त कर्मचारी के संबंध में संहिता की धारा 197 के संदर्भ में मंजूरी आवश्यक है। सेवानिवृत्ति के बाद कानून से आगे बढने और उसे दरकिनार करने का प्रयास किया गया है और इस तरह की मनमाना कार्रवाई को बर्दाश्त नहीं किया जाना चाहिए। अंत में, यह प्रस्तुत किया गया कि इसमें शामिल छोटी राशि और इस तथ्य पर ध्यान देते हुए कि अभियुक्त पहले ही राशि जमा कर चुका है, अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 (संक्षेप में 'परिवीक्षा अधिनियम') के तहत उपलब्ध लाभ को बढ़ाया जा सकता है।

बोरे गौड़ा बनाम कर्नाटक राज्य, [2000] 10 एससीसी 260,में इस न्यायालय के निर्णय पर मजबूत निर्भरता रखी गई है। । यह इंगित किया गया है कि यद्यपि अपील के लंबित रहने के दौरान अभियुक्त की मृत्यु हो गई है, उसके कानूनी प्रतिनिधियों को पक्षकार बना दिया गया है। और परिवीक्षा अधिनियम की धारा 12 के तहत उपलब्ध लाभ से उन्हें वंचित नहीं किया जाना चाहिए।

जवाब में, प्रतिवादी राज्य के विद्वान वकील श्री रमेश बाबू ने प्रस्तुत किया कि अधीनस्थ न्यायालयों ने सही सिद्धांतों और तथ्यात्मक परिदृश्य को ध्यान में रखते हुए कानून के अनुसार कार्य किया है। गलत विनियोग किसी कर्मचारी के आधिकारिक कर्तव्य का कोई हिस्सा नहीं है और इसलिए, संहिता की धारा 197 के तहत किसी भी मंजूरी का सवाल ही नहीं उठता है। किसी भी मामले में, शुरू में, मंजूरी नहीं दी गई क्योंकि आरोपी सेवानिवृत्त हो गया था और राशि का भुगतान करने के लिए सहमत हो गया था लेकिन वह अंतिम निर्णय नहीं था। भ्रष्टाचार से जुड़े मामले में भारी मात्रा में स्टॉक के दुरूपयोगके दोषी आरोपी के खिलाफ कार्रवाई न करना सावर्जनिक हित के खिलाफ होगा। परिवीक्षा अधिनियम इस अधिनियम के तहत आने वाले मामलों पर लागू नहीं होता है।

जब संहिता में नए शब्द धारा 197 इन शब्दो के साथ प्रकट हुई, "जब कोई भी व्यक्ति जो लोक सेवक है या था" (पुरानी दंड प्रक्रिया संहिता,

1898 के संबंधित प्रावधान में संक्षिप्त अभिव्यक्ति के विपरीत) , इस न्यायालय के समक्ष कालीचरण महापात्रा बनाम उड़ीसा राज्य, [1998] 6 एस. सी. सी. 411 में एक विवाद उठाया गया था। कि पुराने अधिनियम और नए अधिनियम के तहत अपराधों के संबंध में भी कानूनी स्थिति को बदला हुआ माना जाना चाहिए। हालाँकि, उक्त विवाद को इस न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया था, जिसमें दो-न्यायाधीशों की पीठ ने इस प्रकार कहा था:

> "एक लोक सेवक जिसने अधिनियम में उल्लिखित अपराध किया है, जब वह एक लोक सेवक था, उस पर अधिनियम की धारा 19 में अनुध्यात मंजूरी के साथ मुकदमा चलाया जा सकता है यदि वह अदालत द्वारा अपराध का संज्ञान लेने पर भी एक लोक सेवक बना रहता है। लेकिन अगर वह उस समय तक लोक सेवक नही रह जाता है, तो अदालत बिना किसी मंजूरी के अपराध का संज्ञान ले सकती है।"

अतः सही कानूनी स्थिति यह है पुराने अधिनियम या नये अधिनियम के तहत अपराधो के लिये अभियोजन का सामना करने वाला कोई अभियुक्त मंजूरी के अभाव के आधार पर किसी भी प्रतिरक्षा का दावा नहीं कर सकता है, यदि अदालत द्वारा उक्त अपराधो का संज्ञान लेने की

तारीख पर वह लोक सेवक नहीं रह लेकिन उन मामलों में स्थिति अलग है जहां संहिता की धारा 197 लागू होती है।

धारा 197 (1) में प्रावधान है कि जब कोई व्यक्ति जो लोक सेवक है या था, सरकार की अनुमति के अलावा या उसके बिना अपने कार्यालय से हटाया नहीं जा सकता था, उस पर किसी ऐसे अपराध का आरोप लगाया जाता है जो उसके द्वारा कार्य करते समय या कार्य करने के लिये कथित रूप से अपने आधिकारित कर्तव्य के निर्वहन में, किया गया हो, कोई भी न्यायालय ऐसे अपराध का संज्ञान पूर्व मंजूरी के अलावा नहीं लेगा (ए) उस व्यक्ति के मामले में जो, जैसाभी मामला हो, संघ केंद्र सरकार के मामलो के संबंध में नियोजित अपराध के किये जाने के समय कार्यरत था और (ख) किसी ऐसे व्यक्ति के मामले में जो नियोजित है या, जैसा भी मामला हो, राज्य , राज्य सरकार के संबंध में कथित अपराध किये जाने के समय कार्यरत था।

हम यह उल्लेख कर सकते हैं कि विधि आयोग ने अपनी 41वीं रिपोर्ट में पैराग्राफ 15.123 में धारा 197 पर विचार करते हुए, जैसा कि वह तब था, देखा कि "हमें ऐसा प्रतीत होता है कि इस धारा के तहत संरक्षण की आवश्यकता लोक सेवक की सेवानिवृति के बाद भी उतनी ही है जितनी सेवानिवृति से पहले है। इस धारा द्वारा प्रदान की गई सुरक्षा भ्रामकहो जायेगी यदि यह शिकायत रखने वाले किसी निजीव्यक्ति के लिये तब तक

इंतजार करने के लिये खुला था तब तक कि लोक सेवक अपना आधिकारिक पद नहीं छोड देता, और फिर शिकायत दर्ज कराता। धारा 197 द्वारा प्रदत्त संरक्षण के लिए अंतिम औचित्य यह देखने में सार्वजनिक हित है कि आधिकारिक कार्य अनावश्यक या परेशान करने वाले अभियोजन की ओर न ले जाएं। यह सरकार पर छोड़ दिया जाना चाहिए कि वह उस दृष्टिकोण से किसी भी लोक सेवक पर मुकदमा चलाने की समीचीनता के सवाल का निर्धारण करे। यह इस अवलोकन के अनुसरण में था कि अभिव्यक्ति 'था' का प्रयोग 'है' के बाद किया जाने लेगा। उन मामलों में भी मंजूरी को लागू करे जहां एक सेवानिवृत्त लोक सेवक पर मुकदमा चलाने की मांग की गई हो।

उपरोक्त स्थिति को आर. बालकृष्ण पिल्लई बनाम केरल, एआईआर (1996) एससी 901 में उजागर किया गया था।

जैसा कि एम. पी. राज्य बनाम एम. पी. गुप्ता, जे. टी. (2003) 10 एस. सी. 32 में उल्लेख किया गया है, संहिता की धारा 197 के तहत मंजूरी आईपीसी की धारा 409 के तहत अपराध के लिए पूर्ववर्ती शर्त नहीं है।

यह कानून में काफी अच्छी तरह से स्थापित स्थिति है कि सौंपे जाने या गलत विनियोजन का वास्तविक तरीका अभियोजन पक्ष द्वारा साबित नहीं किया जाना है। एक बार सौंपी गई संपत्ति साबित हो जाने के

बाद, यह साबित करना अभियुक्त का काम है कि सौंपी गई संपत्ति का निपटान कैसे निपटा गया था। जीवन दास (उपरोक्त) के मामले में तथ्यात्मक स्थिति पूरी तरह से अलग थी। यह अभिनिर्धारित किया गया कि उस मामले में दिए गए वचन को स्वीकारोक्ति या स्वीकारोक्ति नहीं माना जा सकता है। वर्तमान मामले में, निचली अदालत और उच्च न्यायालय द्वारा देखा गया तथ्यात्मक परिदृश्य अलग है। यह न केवल वचन के आधार पर था कि दोषसिद्धि दर्ज की गई थी, बल्कि अभिलेख पर अन्य साक्ष्य भी बिना किसी त्रुटि के सौंपे गये आरोप को साबित करते थे। इसलिए, यह अभियुक्त को साबित करना था कि उसे सौंपी गई संपत्ति का निपटान कैसे किया गया था। इस संबंध में कोई सामग्री नहीं रखी गई थी। इसलिए, अधीनस्थ न्यायालयों ने सही ढंग से अभिनिर्धारित किया कि सौंपा जाना साबित हो गया है। हमारे विचार में सौंपे जाने और गलत विनियोजन से संबंधित अधीनस्थ न्यायालयो द्वारा दर्ज किये गये तथ्य के समवर्ती निष्कर्ष अच्छी तरह से योग्य है और रिकॉर्ड पर साक्ष्य के आधार पर पूरी तरह से उचित हैं और हस्तक्षेप करने के लिए कानून की किसी भी विकृति या पेटेंट त्रुटि से पीड़ित नहीं हैं।

परिवीक्षा अधिनियम के तहत लाभों से संबंधित याचिका पर आते हुए, यह ध्यान दिया जाना चाहिये कि उक्त अधिनियम की धारा 18 स्पष्ट रूप से अधिनियम की धारा 5 (2) के तहत आने वाले मामले में परिवीक्षा

अधिनियम के आवेदन को खारिज करती है। इसलिये, परिवीक्षा अधिनियम के अंतर्गत लाभ के अनुदान के संबंध में अभियुक्त अपीलार्थी की याचिका में कोई सार नहीं है। बोरे गौड़ा के मामले (उपरोक्त) में निर्णय यह भी संकेत नहीं देता है कि परिवीक्षा अधिनियम की धारा 18 का पालननहीं किया गया था। विशिष्ट सांविधिक बाधा को ध्यान में रखते हुए सांविधिक प्रावधान का विश्लेषण किए बिना व्यक्त किए गए विचार, यदि कोई हो, को हमारे विचार में एक बाध्यकारी पूर्ववर्ती न्याय के रूप में नहीं माना जा सकता है और अधिक से अधिक इसे पर इनक्यूरियम – *यानि कि पिछले न्यायालयका निर्णय प्रासंगिक वैधानिक प्रावधान या मिसाल पर ध्यान देने में विफल रहा है*, के अनुसार प्रस्तुत किया गया माना जाना चाहिए। किसी भी दृष्टिकोण से देखने पर, अपील बिना किसी गुणावगुण के है और खारिज होने योग्य है जिसे हम निर्देशित करते हैं।

अपील खारिज की गई।

बी. एस

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल '**सुवास**' की सहायता से अनुवादक अधिवक्ता नृपेन्द्र सिनसिनवार द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।